NJESR/November2020/Volume-2/Issue-11 E-ISSN-2582-5836
DOI-10.53571/NJESR .2020.2.11.7-14

निर्मला वर्मा के निबंधों में परम्परा तथा इतिहास–बोध

प्रियंका
(शोधार्थी, हिंदी विभाग, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर)

(Received 20 October 2020/Revised 30 October 2020/Accepted 10 November 2020/Published 29 November 2020)

परम्परा व इतिहास बोध का अर्थ व महत्त्व –

परम्परा के संबंध में भले ही विभिन्न विद्वानों, इतिहासकारों, दार्शनिको, साहित्यकारों के विचार अपने–अपने दृष्टिकोण के आधार पर भिन्न–भिन्न रहे हो परन्तु जहॉ तक निर्मल वर्मा का दृष्टिकोण है वे परम्परा को वह चीज मानते हैं जो कोई और चीज न होकर सिर्फ अपने भीतर इस धारा की निरन्तरता का बोध है। स्थिर स्थिति में यह व्यक्ति मन में आकर बहती है और भीतर ही भीतर पुनः एक नया अनुभव ग्रहण करती है। वह अपनी तात्कालिकता में शाश्वत है और इसी कारण इतिहास में संत्रस्त न होकर स्वंय प्रत्येक ऐतिहासिक घटना का मूल्यांकन करने का साहस और सामर्थ्य रखती है। उनकी दृष्टि मे परम्परा कोई "अतीत की चीज" नहीं है जिसे परिस्थितिवश वर्तमान में ढ़ोया या निराकरणार्थ साधन में प्रयुक्त किया जाता है अपितु वह प्रारम्भिक रूप से हमारे भीतर उपस्थित है उसका प्रयोग नैसर्गिक है। वे व्यक्ति और परम्परा में भेद स्वीकार न कर दोनों का सहअस्तित्व स्वीकार करते हैं – यह गलतफहमी तभी उत्पन्न होती है, जब हम पश्चिम की देखा देखी में व्यक्ति और परम्परा के बीच भेद देखते है। अंगो की इकाई को देह समग्रता से अलग करते है।"

जहॉ तक भारतीय साहित्य और कला का प्रश्न है इसमें परम्परा और इतिहास बोध द्वारा वर्तमान का सुसंगठित व व्यापाक स्तर पर अपनी संस्कृति के महान उद्बोधों द्वारा चेतना और क्रान्ति को लाने का साहित्य में पग–पग पर सफल प्रयास किया गया जिसमें हिन्दी साहित्य में सांसकृतिक स्तर पर रचना करने वाले निबंध एवं उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे लेखकों का स्थान अग्रणी है परन्तु निर्मल वर्मा इस प्रकार के विचारों को कम बल देते हुए कहते हैं – "संस्कृति का यह भारतीय स्वरूप पश्चिम की सांस्कृतिक धारा से नितांत भिन्न है।

जहॉ भारतीय साहित्यकारों ने अपने देश के गौरवपूर्ण और प्रतिभाशाली इतिहास और संस्कृति को भारतीय जन चेतना और स्वतंत्रता के लिए एक हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जिसका प्रभाव भी सार्थक और सटीक पड़ा लेकिन यहॉ निर्मल वर्मा

Created by Universal Document Converter

अपने निबंधो में कुछ भिन्न प्रकार का विचार रखते हैं। वे मनुष्य की आत्मा और मनुष्य के बीच खिंची खाई को एक करने का प्रयास करते हैं जिसमे यूरोपीय संस्कृति को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। जैसाकि मनुष्य समस्त मूल्यों और मान्यताओं का अन्तिम श्रोत खुद अपनी चेतना में ढूॅंढ़ता है तो फिर संस्कृति और इतिहास जैसे विषयों को वह क्यों नहीं स्वंय ढूॅंढ़ पाता। यूरोपीय संस्कृति में और भारतीय संस्कृति में इसी आधार पर विभाजन खींचते हुए कहते हैं– "वास्तव में यूरोपीय रेनेसैन्स के उदयकाल में मनुष्य के सेक्यूलर और धार्मिक अनुभवों के बीच एक स्पष्ट विभाजन–रेखा खींच दी गई। यूरोपीय संस्कृति एक तरफ इस विभाजन का प्रतिबिंब थी, दूसरी तरफ इसका अतिक्रमण करने की प्रक्रिया भी। बल्कि यूॅं कहें, अतिक्रमण करने की प्रक्रिया में ही आधुनिक यूरोपीय संस्कृति का विकास हुआ था।"

इसके विपरीत भारतीय चेतना में इस तरह का कोई विभाजन न था। भारतीय संस्कृति में मनुष्य की धार्मिक अंतदृष्टि और सांसारिक अनुभवों के बीच कोई विभाजन – रेखा नहीं खींची गई अर्थात यह एक समग्र अखंड़ित और सम्पूर्ण चेतना पर आधारित थी, सतत रूप से गतिशील और प्रवाह के लिए इतिहास पर आधारित नहीं थी। निर्मल वर्मा इसी स्थिति को विकास में बाधक मानते हैं। पश्चिमी मनुष्य इतिहास से आतंकित होने के कारण विकसित हुआ वह मात्र केवल इतिहास द्वारा पतिवर्तन को स्वीकार नहीं करता जबकि भारत इस स्थिति को स्वीकार करता है। भारतीय मनुष्य इतिहास द्वारा बोध प्राप्त न कर उसके विराट और महान स्वरूप को देखकर ही प्रवाहित होता रहा इस आशा में कि वह इस प्रकार स्वंय ही इतिहास और परम्परा की छवि और महानता को लहरों के साथ प्रवाहित होने में ही प्राप्त कर लेगा।

उपर्युक्त स्थिति जब व्यक्ति की आत्म चेतना पर हावी है तो जाहिर है कि वयक्ति के विचार जो मन और मस्तिष्क से होते हुए कागज पर अवतरित होकर एक–एक साहित्यिक रचनारूप धारण करेंगे तो उसमें भी व्यक्ति का वही रूप झलकता हुआ मिलेगा जैसे कि भारतीय साहित्य और साहित्यकार। वे कहते हैं – "जिस विशिष्ट अर्थ में हम यूरोपीय संदर्भ के "इतिहास" का उल्लेख करते है, जहॉ वह जीवन के विभिन्न मोड़ों को इंगित करता है, उस अर्थ में भारत का कोई इतिहास नहीं है। बाह्य परिवर्तनों के बावजूद भारत की मूल जीवन–धारा में कोई बुनियादी अंतर नहीं आया हैं हम जिस दृष्टि से यथार्थ को देखते आए है, जिस ढंग से हमने अपने को काल और प्रकृति से जोड़ा है, मृत्यु के प्रति हमारा जो रूख रहा है, जिससे जीवन के प्रति हमारे रूख का पता चलता है – इन सबमें कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ है, हालांकि समय के घेरे में बाहरी यथार्थ बराबर बदलता रहा है।"

Created by Universal Document Converter

परम्परा तथा इतिहास बोध –

पूरक रूप में निर्मल वर्मा जी का मानना है कि परम्परा ओर इतिहास बोध समानरूप से करीब–करीब एक दूसरे के प्रतिनिधित्व करते हैं, मनुष्य की स्मृतिगत चेतना परम्परा है जो उसके भीतर विद्यमान थी और उसकी जीवन मर्यादा को अनुशासित करती थी अब इतिहास मनुष्य के भविष्य और जीवन मर्यादा को निर्धारित करता है परम्परा को प्राप्त करना इसी के द्वारा आज सम्भव है। इसीलिए परम्परा और इतिहास जैसे साधनों को अपना कर इसको आधार बनाकर कला में प्रभाविता जाने का प्रयास किया गया जबकि निर्मल वर्मा इस बात को अस्वीकार करते हैं। "किन्तु यदि यह बात सच है कि इतिहास का जो प्रभुत्व आज हमारे जीवन में है, वह पहले कभी नहीं था, वहॉ यह बात भी उतनी ही सत्य है, कि मनुष्य आज जितना समय और इतिहास से त्रस्त है, उतना पहले किसी युग मे ंनहीं था। उन्नीसवीं शती में सार्वभौमिक सत्ता से संपन्न जो मदमाता इतिहास–बोध मनुष्य की प्रगति और मुक्ति का सन्देश लाया था, वह हमारे समय तक आते–आते अपनी ही क्रूर पैरॉडी में प्रतिध्वनित–सा होता है, भविष्य को निर्धारित करने वाले नियम, कानून, फार्मूले अब भी हैं किन्तु उन पर बीसवीं शताब्दी के रक्त और यातना और मोहभंग की इतनी गहरी काई जम चुकी है कि वह भविष्य के बन्द तालों में कहीं फिट नहीं हो पाते। कैसा है यह वैज्ञानिक, तर्कशील, गौरवपूर्ण इतिहास–बोध, जिसने आज मनुष्य को स्वंय अपने ही भविष्य के प्रति इतना अरक्षित, आतंकित और अनाश्वस्त बनाकर छोड़ दिया?

भारतीय मनुष्य के विकासशील व उल्लासपूर्ण जीवन न बिताने का कारण वह परम्परा और इतिहास को अपने जीवन का अंग मानकर जीना बताते हैं। वह दोहरी ंस्थिति को ढोता रहा जबकि पश्चिम में मनुष्य ने वास्तविकता को समझकर अपने अस्तिव की तलाश वर्तमान में की न कि इतिहास और परम्परा की लीक पर चलकर–"एक तरफ हमारी चेतना की ॲधेरी मिथक –जड़ों ने खुद – अक्षुण्ण रहकर इतिहास के पानी को अपने ऊपर से बह जाने दिया और दूसरी तरफ व्यावहारिक स्तर पर हमें बराबर बदलते हुए ऐतिहासिक यथार्थ से समझौता भी करना पड़ा है।

जहॉ तक मनुष्य इस बात को अपने पक्ष में स्वीकार करता हैं वह वहीं तक उसका अनपेक्षित परिणाम भी पाता है। निर्मल वर्मा मानते है कि व्यक्ति या कलाकार इतिहास –बोध द्वारा यथार्थ का चित्रण किया जाना जिस सीमा तक स्वीकार करता है वह उतनी ही और विस्तृत होती जाती है और उसका कोई पक्षगत परिणाम भी समक्ष उपस्थित नहीं होता। इतिहास–बोध को वे एक निर्जीव वस्तु का मनुष्य द्वारा प्रयोग जैसा

Created by Universal Document Converter

मानते हैं। "यह आधुनिक युग की विचित्र विडम्बना मानी जायेगी कि एक तरफ आज का मनुष्य "इतिहास बोध" से आक्रान्त है, दूसरी तरफ मृत अतीत और काल्पनिक भविष्य के बीच स्वंय इतिहास की जीवन्त धारा सूख गयी है। जिस तरह नदी में डूबता हुआ आदमी पानी से रिश्ता नहीं जोड़ पाता उसी तरह इतिहास में डूबा मनुष्य समय का मर्म नहीं जान सकता।

जब निर्मल वर्मा इस तरह की बात करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो वर्तमान को ही एक दुविधा से ग्रस्त स्वीकारते हैं। इस परेशानी को वे मात्र केवल इतिहास से जोड़ते हैं कभी–कभी मनुश्य के साथ ऐसी परिस्थितियॉ आ जाती है जब उसे किसी ऐसे सहारे या सम्बल की आवश्यकता होती है जो उसे उस उलझन से बाहर निकाल सकें परन्तु वर्मा जी कहते है कि उस सहारे या सम्बल को अपनी आत्मचेतना में संजोकर रखे तो कोई अड़चन सामने आयेगी ही नहीं परन्तु हम यह मानने को पूर्ण रूप से सहमत नहीं है क्योंकि आधार तो हमारे पास होता है परन्तु कभी–कभी विशेष परिस्थिति में उसका विशिष्ट प्रयोग अधिक लाभदायक व प्रभावशाली होता है ओर ऐसा ही कुछ हमारे साथ भी हुआ है। वर्मा जी कहते हैं – "स्मृति की यह विशेषता है कि वह अपने पीछे कोई पद–चिह्न नहीं छोड़ जाती–वह स्वंय पद–चिह्न बन जाती है, परम्परा का मतलब इन पद–चिह्नो पर चलकर उस वर्तमान को परिभाषित करना हैं जहां मनुष्य आज जीवित है। हम चलते पीछे की तरफ हैं किन्तु पहुंचते वहां हैं जहां हम आज इस क्षण में हैं परम्परा इस अर्थ में विगत की खोज नहीं, विगत के भविष्य का अन्वेष्ण हैं हम पीछे की ओर चलते हुए आगे की तरफ बढ़ते हैं और तब हमें पता चलता है कि "आगे" और "पीछे" का ऐतिहासिक–बोध स्वंय अपने में छलना है–समय की दृष्टि से जो आगे हो, जरूरी नहीं वही विगत की कसौटी बन सके, उलटे जो बीत चुका है वह एक नैतिक मर्यादा के रूप में एकस्वप्न की तरह मनुष्य के आगे–आगे चलता है।

निर्मल वर्मा ऐतिहासिक सत्य को वर्तमान सत्य की तुलना में छोटा साबित करते हैं वे कहते है कि दो हजार वर्ष पूर्व सूली पर चढ़ाये गये ईसा मसीह और भवगान बुद्व मनुष्य के भीतर आज भी मौजूद है और उन्हें वर्तमान सत्य बनने में लगभग उससे दुगुना समय भी लग सकता है। ऐतिहासिक सत्य को वे मनुष्य के क्रमागत सत्यों और वर्तमान सत्यों से निम्न कोटि का मानते है। उनका मानना है कि इतिहास जिसकी दुहाई देरक, हम अपने आपको बड़ा गौरवान्वित महसूस करते हैं वह किसी अन्य द्वारा प्रदत्त न होकर स्वंय हमारे द्वारा बनाया गया है ओर उसी से अपना भविष्य निर्माण करता है। वे भविष्य निर्माण के लिये मात्र अतीत रूपी खजाने को अपने भीतर आत्मसात करने व उसी से कुछ नया सृजित करने पर बल देते हैं –"मनुष्य की

Created by Universal Document Converter

आत्मा की जरूरतों में अतीत की जरूरत सबसे अधिक शक्तिशाली हैं।" सिमोन बेल के इस शब्दों के माध्यम से वे अपनी बात को पुरजोरता के साथ प्रस्तुत करते है और यह बात रखते हैं कि उपर्युक्त सिमोन बेल के शब्दों के विपरीत भारतीय साहित्यकारो और उनकी कला में जो बात है वह उनके विचारों का प्रतिनिधित्व न कर उनका विरोध करती है और इस विरोध का निर्मल वर्मा नेयह कहकर कि "परम्परा ओर मनुष्य के भविष्य के बारे में क्या आचार्य हजारी प्रसाद जी की आत्मा इन शब्दों में नहीं झलकती"?

मनुष्य का अपनी आत्मा द्वारा निर्वासित हो जाना कितना बड़ा अभिशाप है, इस बात को वे इतिहास और परम्परा पर ढालते हुए उसको इस हेतु दोषी ठहराते हैं। मनुष्य का अपनी परम्परा और इतिहास–बोध से चिपके रहना उसकी उन्नति में सबसे बड़ा बाधक होता है जबकि यदि वह अपने वर्तमान से तादात्म्य स्थापित कर अपने अस्तित्व को यदि सही मायनों में खोजे और वर्तमान प्रदत्त विभीषिकाओं और विडम्बनाओं को अपनी अतीत की छाया में दूर करने का प्रयास न कर अपने वर्तमान ओर अपनी आत्मचेतना को आधार बनाकर यदि वह आगे बढ़े तो निश्चित रूप से वह प्रगतिशीलता को प्राप्त होगा। "यूरोप में आधुनिकता का आन्दोलन एक ऐसे खण्डित काल बोध से उत्पन्न हुआ था जिसमें मनुष्य का इतिहास–बोध और परम्परा दो स्वतन्त्र इकाइयों में विभाजित हो गयी थीं। यह नहीं कि आधुनिक यूरोपीय मनुष्य अपनी परम्परा के प्रति सचेत नहीं था– किन्तु अब वह बाहर की चीज थी, जिसे वह स्वीकार कर सकता था ठुकरा सकता था। इतिहास –बोध के बीच यह अनोखा अन्तर्विरोध है कि मनुष्य की स्वतन्त्रता ही उसे अतीत–बोध से विच्छिन्न कर देती है, परम्परा अब जीने की मर्यादा नहीं, एक खोया हुआ समय है, कही अतीत में जमा हुआ खजाना, जिसे मनुष्य अपनी ऐतिहासिक चेतना से उपलब्ध करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो "ऐतिहासिक समय" मनुष्य से समूचे समय को हथियाने की, कॉलोनाइज करने की चेष्टा करता हैं, उसे अपनी अंह–केन्द्रित इमेज में ढालना चाहता है। "

निर्मल वर्मा ने इतिहास को स्वीकारने की विपरीतताओं में एक बात को ओर उठाया है ओर वह यह है कि ऐतिहासिक तथा परम्परा–बोध केवल अहम् केन्द्रित न होकर समस्त संस्कृतियों को आत्मसात् कर लेता है जिसके कारण केवल लाभ ही नहीं हानि का भी मुंह देखना पड़ता है– "यूरोपीय इतिहासकारों और पुरातत्व के पण्डितों ने अपने अनुवादों, खोजों और खुदाइयों से भारतवासी को अपनी विशिष्ट परम्परा से परिचित कराया, उसी सभ्यता ने उस सामाजिक संरचना के तन्तुजाल को भी नष्ट किया, जिसमें मनुष्य अपनी पम्परा में सॉरा लेता था, अपने पावन अतीत को अपने वर्तमान में जीता था। किसी जाति के मिथक और विश्वास उनकी जीवन प्रणाली–उसके आत्मीय संसार से

Created by Universal Document Converter

जुड़कर ही जीवन्त हो पाते है, एक की अभिव्यक्ति दूसरे के द्वारा होती है। मनुष्य जीने की प्रक्रिया में अपने विश्वासों को उद्‌घाटित करता है, उन विश्वासों के द्वारा जीवन जीने की प्रणाली मर्यादित करता है, ऐसी संस्कृति में इतिहास का समय एक अक्षुण्ण धागे से परम्परा के कालातीत बोध से जुड़ा होता है।"

निर्मल वर्मा इतिहास –बोध का परिणाम पश्चिम – द्वारा प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं कि उनकी जीवन प्रणाली दो कटघरों में विभाजित होकर रह गई है।

इतिहास–बोध को निर्मल वर्मा फिर भी अपने को पाने खोजने और वर्तमान स्थिति को पहचानने का एक साधन जरूर स्वीकार करते है परन्तु जब मनुष्य अपने आप को खो देता है तभी यह स्थिति लागू होती है अन्यथा नहीं क्योंकि निर्मल जी कहते है कि यदि परम्परा ओर इतिहास–बोध उसके जीवन के साथ–साथ एक अंग के रूप में चले तो यह स्थिति घटित ही नहीं होगी। "यह ऐतिहासिक–बोध का अभिशाप है कि मनुष्य अपने को खो देता है, किन्तु उसका वरदान भी यही है कि वह सब कुछ खोने के बाद भी सब कुछ पा सकता है। वह पाना समय में होता है, किन्तु जो चीज पायी जाती है, वह खुद समय की सीमाओं का अतिक्रमण कर लेती है।

परम्परा द्वारा मानव जिज्ञासा व समस्या का हल नहीं हो सकता और न ही वह उसे संतुष्ट कर पाती है क्योंकि उसमे ंपूर्ण शुद्वता नहीं होती है इसीलिए प्रत्येक पीढ़ी को अपने समय के साथ ही इसका अर्जन करना पड़ता है। तभी वह विश्वसनीय और प्रगतिशीलता का वाहक बन सकता है। अन्यथा वह दो पाटों वाली स्थिति के बीच अपनी अस्मिता को ढूंढ़ने के लिए बार–बार अपनी परम्परा ओर इतिहास की ओर कूच करता रहेगा।

निर्मल वर्मा गांधी जी से पूर्णतया सहमत है– "हमारा भविष्य हमारे अतीत से जुड़ा है– और भविष्य और अतीत दोनों ही हमारी वर्तमान जीवनधारा के अंग है। यह अनिवार्य नहीं कि पश्चिम की तकनीकी सभ्यता को हम जोर जबरदस्ती अपने भविष्य पर लागू करें– और जान बूझकर उन अमानवीय अंतर्विरोधों के शिकार बनें, जिनसे आज पश्चिमी जगत (पूंजीवादी और समाजवादी दोनों ही) इतनी बुरी तरह ग्रस्त है। मार्क्स ने जो चेतावनी पश्चिमी दुनिया को दी, गॉधी जी ने उन खतरों के प्रति हमारा ध्यान वर्षो पहले आकृष्ट किया था।"

आज भी हमें इन्हीं आदर्श कथनों को ध्यान में रखना होगा क्योंकि आज हम अपनी परम्परा और इतिहास–बोध का सही अर्थ भूल चुके हैं उसे मात्र ऊपरी जामा पहना कर प्रस्तुत करते हैं जिसका परिणाम भी हमारे सामने है।

Created by Universal Document Converter

नन्दकिशोर आचार्य निर्मल वर्मा के "परम्परा और इतिहास बोध" सम्बंधी विषय पर विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं –निर्मल वर्मा के विचार आधुनिक भारतीय चित्त के द्विभाजन का वक्तव्य तो करता ही है, अपनी परम्परा की व्याख्या करते हुए उसके वर्तमान द्वन्द्व को भी परिभाषित कर देता हैं। निर्मल वर्मा के लिए परम्परा कोई अतीत की वस्तु नहीं है, वह सदैव एक जीवन्त धड़कन की तरह हमारे भीतर रहती है, इसीलिए वह निरन्तर वर्तमान है, वह अपनी तात्कालिकता मे शाश्वत हैं परम्परा कोई अवधारण नहीं, एक अनुभूति है, एक बोध है जिसके आधार पर हमें समय और इतिहास को समझना चाहिए। सवाल उठता है कि यह परम्परा किस तरह की अनुभूति है? निर्मल वर्मा के लिए भारतीय परम्परा का अर्थ संलग्नता का सर्वव्यापी बोध है– अपने को समग्र के एक अंश के रूप में अनुभव करना – समग्र जो देश में भी व्याप्त है और काल में भी, जो प्रकृति से उसी तरह जुड़ा है जैसे भूगोल, पेड़ पौधे या पशु पक्षी। संलग्नता का यह सर्वव्यापी बोध भारतीय चित्त का मुख्य कारक है जिसे निर्मल संस्कृति का स्वप्न कहते है।

निर्मल वर्मा मानते है कि इस दरार का मुख्य कारण प्रकृति और परिवेश के प्रति हमारे रिश्ते का स्वरूप है। क्या हम अपने को प्रकृति का अंश महसूस करते हैं? या प्राकृति हमारे लिए अन्य है? पश्चिम की दृष्टि प्रारम्भ से ही प्रकृति को अन्य मानती आयी है। प्रकृति पर विजय यूरोप की बुनियादी प्रवृत्ति रही है जो रेनेसॉ के बाद और बलवती और उग्र होती गयी है। औद्योगीकरण और उससे निसृत आधुनिकता तथा उपनिवेशन यूरोप की इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। आत्मचेतना – अपने को अन्य से अलग अनुभव करना – यूरोपीय चिन्तन का मुख्य आधार रही है और अन्य की अवधारणा इसमें पूर्व स्वीकृत है क्योंकि अन्य के संदर्भ से ही, अपने को उससे अलग या उसके बरक्स अनुभव करने से ही, आत्मचेतन होना संभव है। इसीलिए प्रकृति के साथ संलग्नता नहीं बल्कि प्रकृति पर विजय इस आत्म–चेतना की यूरोपीय प्रवृत्ति का ही वैज्ञानिक रूपान्तरण है।

निर्मल वर्मा का विश्लेषण भारतीय और यूरोपीय दोनों ही परम्पराओं के मर्म को समझते हुए उनमें ऐतिहासिक प्रक्रिया के कारण आ गयी विकृतियों –कहें कि संस्कृति में इतिहास के हस्तक्षेप – की न केवल सही पहचान करता बल्कि यह विश्वास भी जगाता है कि हम इतिहास के उपनिवेश नहीं, वह मुक्त चेतना हैं जो सम्पूर्ण का–ऋत का–अंश होने के बोध में ही अपनी मुक्ति की अनुभूति करती है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. कला का जोखिम– निर्मल वर्मा, 1981, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
2. शब्द और स्मृति– निर्मल वर्मा, 1976, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

Created by Universal Document Converter

3. निर्मल वर्मा– सम्पादक अशोक वाजपेयी, 1990 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
4. शताब्दी के ढलते वर्षो में – निर्मल वर्मा, 1995 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
5. धुंध से उठती धुन – निर्मल वर्मा।
6. साहित्य का स्वभाव – नंद किशोर आचार्य, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
7. सृजन और चिन्तन – डॉ. प्रेम सिंह, साहित्य सहकार, विश्वास नगर नई दिल्ली।
8. अन्तर्यात्रा – निर्मल वर्मा, संपा. नंदकिशोर आचार्य।

Created by Universal Document Converter